

वैश्विक असंतुलन : भारतीय परिदृश्य*

डॉ. या.वे.रेड्डी

आदरणीय अवर महासचिव, श्री ओकाम्पो, राजदूत निरूपम सेन तथा विशिष्ट अतिथियो !

“वैश्विक असंतुलन : भारतीय परिदृश्य” विषय पर व्याख्यान देने के लिए संयुक्त राष्ट्र में आमंत्रित किया जाना विशेषाधिकार तथा सम्मान है। मैं, प्रो. जोस एन्टोनियो ओकाम्पो, अवर महासचिव को मुझे यह व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित करने के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा। आज के अपने प्रस्तुतीकरण में मैं नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों के बीच एक वाद-विवाद को उठाना चाहूंगा। साथ ही मैं ओकाम्पो, जो एक मंत्री, एक प्रोफेसर रहे हैं और वर्तमान में ख्याति प्राप्त अंतरराष्ट्रीय सिविल सर्वेंट हैं, की उपस्थिति से अभिभूत हूँ। इसके बाद उठ सकने वाली चर्चाओं से लाभांशित होने के लिए मैं अपने प्रस्तुतीकरण को 30 से 40 मिनट तक ही सीमित रखूंगा।

सर्वप्रथम, मैं तीन मुद्दे उठाकर वैश्विक असंतुलनों पर अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रकाश डालना चाहूंगा : (क) वैश्विक असंतुलनों की अनिवार्य विशेषताएं जैसी कि वे आज हैं, (ख) इन असंतुलनों के संभावित कारण तथा (ग) नीतिगत प्रतिक्रियाओं पर उभरते मतैक्य।

दूसरे, वैश्विक असंतुलनों में भारतीय परिदृश्य को रेखांकित करने का प्रयास करूंगा। ऐसा करते हुए, मैं निम्नलिखित पहलुओं को शामिल करने का प्रयास करूंगा; (क) वैश्विक असंतुलनों में भारत की भूमिका, (ख) कारणों और नीतिगत प्रतिक्रियाओं पर वैश्विक मतैक्य के प्रति दृष्टिकोण, और (ग) भारत पर वैश्विक असंतुलनों का संभावित प्रभाव तथा (घ) वैश्विक असंतुलनों पर नीतिगत चर्चा में तेल का एक नए कारक के रूप में उभरना।

तीसरे, वैश्विक असंतुलनों को बेहतर रूप में समझने के लिए विश्लेषण की संभावित कार्यसूची का पता लगाना।

I. ग्लोबल असंतुलनों पर ग्लोबल परिदृश्य

(क) ग्लोबल असंतुलनों की अनिवार्य विशेषताएं

यह समझना उपयोगी होगा कि अलग-अलग देशों में एक विशेष समय पर अर्थव्यवस्थाओं के बीच चालू खाते का घाटा या अधिशेष का होना अपरिहार्य है। विशेष रूप से, वैश्विक समेकन के पक्ष में एक तर्क

यह है कि पूंजी का प्रवाह विकसित अर्थव्यवस्थाओं से पूंजी की कमी वाली विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की ओर होगा। इसका तात्पर्य है कि बाद में वहां चालू खाता घाटा होगा। वस्तुतः समस्या चालू खाते के घाटे या अधिशेष के होने की नहीं है, बल्कि यह भारी चालू खाता घाटे और भारी चालू खाते के अधिशेष के लगातार बने रहने की है, जो अर्थव्यवस्थाओं में अनिर्वहनीयता और विघ्नकारी परिस्थितियों के फैलने का भय पैदा करती है।

(ख) वैश्विक असंतुलनों के संभावित कारण

चालू वैश्विक असंतुलन कुछ देशों में चालू खाते की स्थितियां भारी विसंगतियों के रूप में और इसकी प्रतिछाया घरेलू बचत निवेश में विसंगतियों के रूप में झलकती हैं। उदाहरण के लिए 2005 में अमरीका का चालू खाता घाटा सघट के 6.4 प्रतिशत का था जो 805 बिलियन अमरीकी डालर का बैठता है, जबकि जापान तथा उदीयमान एशिया का चालू खाता अधिशेष अमरीका के चालू खाता घाटे के 60 प्रतिशत के लगभग बैठता है। अब बढ़ती हुई तेल की कीमतों के कारण तेल निर्यातक देश भी भारी चालू खाता अधिशेष दर्शा रहे हैं।

कुछ लोगों द्वारा यह तर्क दिया गया कि 1990 के बाद के दशक से, कई उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की प्रक्रियाएं, विशेषकर, एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में, भारी रूप से बाहरी मांगों पर निर्भर हो गई हैं। ऐसे परिदृश्य में, यह महसूस किया गया है, कि इनमें से कई देशों ने अपनी मुद्राओं को निम्न मूल्यांकित रखते हुए बाह्य मूल्यों के साथ प्रतिस्पर्धात्मकता बनाए रखने की कोशिश की है। यह बताया गया है कि इस प्रक्रिया ने इसके परिणामस्वरूप उभरती हुई एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के लिए भारी व्यापार और चालू खाता अधिशेष को प्रेरित किया है और विश्व में अन्यत्र भारी व्यापार और चालू खाता घाटा को प्रेरित किया है जो अमरीका में सर्वाधिक रूप से दर्शनीय है।

यह भी स्पष्ट है कि अमरीका में हाल के वर्षों में उपभोक्ता मांग के निरंतर बढ़ने के साथ-साथ बचत निवेश संतुलन में तेज गिरावट की पूर्ति केवल आयातों को बढ़ाकर की जा सकी, अतः अमरीका में बढ़ता हुआ भारी चालू खाता घाटा पैदा हुआ। अमरीका में बचत निवेश संतुलन में प्रतिकूल बदलाव 2002 से उच्च बजट घाटे तथा 1998 से निवल वैयक्तिक बचत में गिरावट के रूप में झलकता है।

* यूनाइटेड नेशन्स (राष्ट्र संघ) : न्यूयार्क में डिपार्टमेंट ऑफ़ इकॉनॉमिक एवं सोसियल ऑफिस (डीइएसए) में 11 मई 2006 को विकास के लिए वित्तपोषण कार्यालय में डॉ. या.वे.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक का मुख्य भाषण।

(ग) नीतिगत प्रतिक्रियाओं पर उभरता मतैक्य.

आज जो वैश्विक असंतुलन विद्यमान है वह अपने आप सही हो जाएगा और संभवतः अव्यवस्थित सुधार के कम अनुकूल परिणाम होने के भी अवसर हैं। यह माना गया है कि एक परिदृश्य ऐसा हो सकता है कि असंतुलनों में निजी क्षेत्र द्वारा प्रेरित समायोजन बिना किसी नीतिगत कार्रवाई के भी हो जाए। यह तर्क दिया गया है कि अव्यवस्थित समायोजन के कितने ही विरल अवसर क्यों न हों, अव्यवस्थित समायोजनों की भारी लागत को देखते हुए सार्वजनिक नीति यह खतरा नहीं उठा सकती। अतः वह अपेक्षाकृत व्यवस्थित समायोजन के लिए प्रयास करेगी। किसी भी स्थिति में, यह अनुभव किया गया है कि, यदि यह बहुत अधिक व्यवस्थित तरीके से नहीं किया गया तो समायोजनों की लागत को न्यूनतम रखने तथा उपयुक्त नीतिगत कार्रवाई करने की दृष्टि से नीतिगत मुद्दों को बेहतर रूप में समझने की जरूरत है।

अन्य अनेक लोगों की तरह हमने भी यहां समीक्षा की है कि विश्व भर में चालू खाते की स्थिति में निरंतर बने हुए और बढ़ते हुए असंतुलन अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की कार्य प्रणाली के लिए गंभीर जोखिम खड़े कर सकते हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रमुख रूप से शामिल सभी अभिनेता इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लें। पुनर्संतुलन करने के सफल कार्यान्वयन के लिए परंपरागत व्यापक नीतियों - मौद्रिक, राजकोषीय, चालू मुद्रा नीतियों को सावधानीपूर्वक लागू करने तथा संरचनागत सुधारों के व्यापक व्यष्टिगत कार्यसूची के अनुपालन की जरूरत होगी।

इस चर्चा का काफी बड़ा भाग इस सुधार (या समायोजन) के विभिन्न तत्वों को प्रत्येक देश द्वारा दिए गए तुलनात्मक भारांक तथा देशों के बीच सही समन्वय पर होगा। जहां तक वैश्विक असंतुलनों को सही करने के लिए चालू वैश्विक पहलों का सवाल है, 22 अप्रैल 2006 को अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय समिति (आइएमएफसी) द्वारा जारी “सरकारी विज्ञप्ति” इस बात को रेखांकित करती है कि वैश्विक असंतुलनों के लिए व्यवस्थित मध्यावधिक संकल्प के लिए कार्रवाई के लिए सभी की साझा जबाबदारी है। और यह साझा कार्रवाई देशों द्वारा अकेले अकेले की गई कार्रवाईयों की अपेक्षा सदस्य देशों और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को अधिक लाभ पहुंचाएगी। उक्त “विज्ञप्ति” में वैश्विक असंतुलन के व्यवस्थित समाधान के लिए सुझाई गई रणनीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

- राष्ट्र संघ में राष्ट्रीय बचत को बढ़ाना जिसमें बजट घाटे को कम करने तथा निजी बचतों को बढ़ाने के उपाय भी शामिल हों;
- यूरो क्षेत्र तथा कई अन्य देशों में वृद्धि की संभावना को बनाए रखने तथा देशी मांग को बढ़ाने के लिए संरचनागत सुधारों को लागू करना;
- जापान में राजकोषीय समेकन सहित और भी संरचनागत सुधार;
- उदीयमान एशिया में अनेक अधिशेष वाले देशों में विनिमय दर की और अधिक नमनीयता की अनुमति देना;
- तेल निर्यातक देशों में सुदृढ़ व्यापक आर्थिक नीतियों के साथ-साथ उच्चतर तेल राजस्व को दक्षतापूर्वक खपाने को प्रौन्नत करना।

उपर्युक्त के संदर्भ में अलग-अलग अर्थव्यवस्थाओं और क्षेत्रों में सामान्यतः जिन समायोजनों की वकालत की जाती है, वे संक्षेप में निम्नलिखित हैं;

- (i) अमरीकी प्राधिकारियों के लिए एक प्रमुख चुनौती ऐसी नीतियां बनाना हो सकता है जो वैयक्तिक बचतों को बढ़ाने के उपायों और खपत को कम करने के उपायों के बीच संतुलन लाएं। तथापि, अमरीकी नीतियां राजकोषीय घाटे में सुधारों को आघात पहुंचाए बिना राजकोषीय घाटे की वृद्धि को क्रमिक रूप से कम करने की प्रक्रिया के बीच संतुलन बनाए रखने का नाजुक कार्य करना होगा, यह ध्यान में रखना चाहिए कि मांग को दबाने का परिणाम दूसरी मंदी हो सकती है जो वैश्विक अर्थव्यवस्था के हित में नहीं होगी। राजकोषीय समेकन की दिशा में किए जाने वाले उपायों के साथ-साथ अमरीकी डालर की वास्तविक विनिमय दर का क्रमिक रूप से पुनः संयोजन (मिलान) करना है। इतना कहे जाने के बाद कि ऐसी मिश्रित नीतियों की सफलता की मुख्य कुंजी होगी उचित चरित्रबल और यह एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक नीतिगत मुद्दा है।
- (ii) यूरो क्षेत्र जो बाह्य मांग पर काफी रूप से निर्भर बना हुआ है, घरेलू मांग को बढ़ाने तथा समुत्थान को व्यापक आधार प्रदान करने के लिए कुछ संरचनागत सुधार लागू कर सकता है, विशेषकर, उत्पाद और श्रम बाजार संबंधी नीतियों के बारे में जहां निवेश में समुत्थान के संकेत हैं, अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि यदि इससे और प्रगति हुई तो वह श्रमिकों के श्रम, स्वास्थ्य रक्षा, उत्पाद, पेंशन तथा वित्तीय बाजार के सुधारों में बेहतर समेकन को बढ़ाने में सहायक होगा। यह मानी हुई बात है कि संरचनागत सुधार अपनी प्रकृति से ही जटिल हैं और उनका प्रभाव सर्वाधिक रूप से मध्यावधि में ही देखे जा सकते हैं।
- (iii) हम पहले से ही देख रहे हैं कि जापान की अर्थव्यवस्था सुधार के पथ पर है, चालू खाता अधिशेष सुदृढ़ होती हुई घरेलू मांग की पृष्ठभूमि में सुकुड़ना शुरू हो गया है जो कि महत्वपूर्ण है। इस प्रकार जापानी अर्थव्यवस्था से यह आशा है कि वह अपनी वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ करने, कंपनी क्षेत्र का पुनर्विन्यास करने तथा भारी राजकोषीय असंतुलन को कम करने के ठोस उपाय करना जारी रखेगी।
- (iv) उभरती हुई, विशेषकर एशिया की अर्थव्यवस्थाओं के लिए, कुछ विशेषज्ञ यह सुझाते हैं कि वृद्धि की रणनीति को घरेलू मांग की ओर पुनर्मुखी किया जाए ताकि अमरीका को निर्यातों में आने वाली संभावित कमी की प्रतिपूर्ति की जा सके। इस क्षेत्र में घरेलू मांग के सुदृढ़ होने के कुछ संकेत मिलने पहले से ही शुरू हो चुके हैं। यह महसूस किया गया है कि उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में उच्चतर निजी निवेश का समर्थन करने के लिए निवेश के वातावरण में सुधार आना महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि इस क्षेत्र में नीति निर्माताओं का ध्यान विदेशी मुद्रा विनिमय दर नीति की ओर जाने की आवश्यकता है। तथापि, कुछ अन्य लोग यह सोचते हैं कि विनिमय

दर नीति में समायोजन इन देशों में उत्पाद और रोजगार के हितों को पूरा करने में सहायक नहीं होंगे, जबकि इन असंतुलनों को कम करने में स्वयं उनके द्वारा किए गए विनिमय दर समायोजनों की प्रभावशीलता निर्णायक नहीं होगी।

- (v) तेल निर्यातक देशों ने भारी व्यापार अधिशेष दर्शाए हैं। उनके द्वारा देशी और विदेशी बाजारों में निवेश वैश्विक मांग को पुनः संतुलित करने में सहायता करेंगे। यह सुझाया गया है कि इन देशों को ऐसे क्षेत्रों में जहां सामाजिक प्रतिलाभ उच्च हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी संरचना तथा सामाजिक सुरक्षा में, अपने व्यय बढ़ा सकते हैं। यह महसूस किया गया है कि इन देशों में कानूनी और आर्थिक बुनियादी संरचना को सुदृढ़ करने के लिए संरचनागत नीतियां निवेश बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं।

II. वैश्विक असंतुलनों पर भारत का परिदृश्य

(क) वैश्विक असंतुलनों में भारत की भूमिका

आजादी से लेकर भारत प्रथम तीन दशकों (1950 से 1980 के दशक तक) की मामूली-सी वृद्धि दर से 1980 के बाद के दशक की उच्च वृद्धि दर के रास्ते पर चला है। गत ढाई दशक में भारत विश्व की सबसे तेज गति से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में उभरी है जिसकी औसत वृद्धि दर 6 प्रतिशत वार्षिक रही है तथा अर्थव्यवस्था के आकार की दृष्टि से, विशेषकर क्रयशक्ति की समता की दृष्टि से, अर्थव्यवस्था के क्रम में सुधार हुआ है। गत तीन दशकों में हमारी औसत वृद्धि दर 8 प्रतिशत की रही है। गत ढाई दशकों में प्रभावी वृद्धि दर दर्ज करने के अलावा, भारत की वृद्धि प्रक्रिया स्थिर रही है। अध्ययन यह संकेत करते हैं कि भारत में वृद्धि में वार्षिक घटबढ़ न्यूनतम रही है। इस अवधि के दौरान हमने केवल एक संकट 1991 में झेला है। इस संकट के बाद एक विश्वसनीय व्यापक आर्थिक संरचना और स्थरीकरण कार्यक्रम चलाए गए जो व्यापार, उद्योग, विदेशी निवेश, विनिमय दर, लोक वित्त और वित्तीय क्षेत्र तक व्याप्त रहे। बाद के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था 1997-98 के दौरान आए पूर्व एशियाई संकट और रूसी संकट से होनेवाले संक्रामक प्रभाव से अपने पोखरन के बाद लगे प्रतिबंधों जैसी स्थिति तथा मई-जून 1999 के दौरान सीमा पर हुए संघर्ष के प्रभाव से आपको सफलतापूर्वक बचा सकी।

इस संदर्भ में, इसके प्रभावों को देखना उपयुक्त होगा कि भारत द्वारा अपनाई गई नीतियों ने किसी भी रूप में चालू वैश्विक असंतुलनों को बढ़ाने में योगदान नहीं किया है।

- (i) 2001-02 और 2003-04 के दौरान भारत ने मामूली सा चालू खाता अधिशेष दर्ज किया, परंतु यह केवल कारोबारी चक्र के चरण का प्रतिबिंब था। भारत ने गत दो वर्षों में मामूली-सा चालू खाता घाटा दर्ज किया है। वस्तुतः वर्तमान संकेतकों के अनुरूप तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना के पूर्व अनुमानों के अनुसार भारत के निकट भविष्य

में एक मामूली-सा परंतु निरंतर वहनीय चालू खाता घाटा बनाए रखने की संभावना है।

- (ii) यह देखा गया है 2000-05 के दौरान अधिकांश एशियाई उभरती अर्थव्यवस्थाओं और जापान में रिज़र्व के संचयन में अधिकांश भाग सामान्यतः चालू खाता घाटा का बैठता है। भारत के लिए चालू खाता घाटा रिज़र्व के संचयन का छोटा-सा भाग बनता है। हमारे मामले में, चालू खाता अधिशेष के विपरीत पूंजी प्रवाहों ने रिज़र्व के संचयन में बढ़ती हुई महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- (iii) बाजार के हस्तक्षेपों के साथ-साथ बिना किसी पूर्व-निर्धारित लक्ष्य के बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर के उद्देश्य के साथ उद्वेगशीलता के अनिवार्यतः प्रबंधन के हमारे दृष्टिकोण ने अच्छा कार्य किया है। अनुभव के स्तर पर भारतीय विनिमय दर नीति की नमनीयता अमरीकी डालर सहित प्रमुख मुद्राओं के प्रति भारतीय रुपए के दो तरफा घटबढ़ के रूप में देखी जा सकती है। उदीयमान बाजारों में अर्थक्षम विनिमय दर रणनीतियों पर हाल ही में किए अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान ने भारत द्वारा अपनाई गई विनिमय दर नीति को पर्याप्त समर्थन प्रदान किया है।
- (iv) भारत में वृद्धि का मुख्य प्रेरक घरेलू मांग रही है। निर्यातों और आयातों में प्रभावी वृद्धि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करती हैं, परंतु भारत में सघट के प्रति निर्यातों का अनुपात अधिकांश उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में निम्न है।
- (v) सुधार की अवधि के दौरान, सघट की वृद्धि में समग्र सुधार में सकल घरेलू बचत की दर में सुधार से भी समर्थन मिला है। उदाहरण के लिए, पिछले तीन वर्षों की उच्च वृद्धि के चरण में यह बचत दर 2001-02 के 23.5 प्रतिशत से 5.5 प्रतिशत बिंदु बढ़कर 2004-05 में 29.1 प्रतिशत हो गई। सकल घरेलू निवेश पहली बार 2004-05 में 30 प्रतिशत से ऊपर बना रहा। इसका मुख्य कारण था कि निजी निवेश 19.7 प्रतिशत की दर से बढ़ा। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम लागू हो जाने के साथ ही हाल के वर्षों में भारत में राजकोषीय स्थिति ने सुधार दर्शाया है। राजकोषीय समेकन प्रक्रिया ने मुख्य घाटा संकेतकों में चरणबद्ध रूप में कमी लाने की परिकल्पना की है। मौद्रिक नीति, जहां निवेशगत मांग के लिए समर्थनकारी रही है, वहीं वह मूल्य और वित्तीय स्थिरता पर जोर देती है और मुद्रास्फीति की प्रत्याशाओं को सीमित रखने में सफल रही है। ये कारक वर्तमान वृद्धि की गति को - अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद की 8 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि को बनाए रखने की संभावना के लिए विश्वास प्रदान करते हैं।

इस प्रकार भारत ऐसी नीतियों का अनुसरण करता रहा है जिन्होंने न केवल इसके उद्देश्यों को पूरा किया है, बल्कि वैश्विक स्थिरता में भी योगदान किया है। जैसा कि हमारे वित्त मंत्री पी.चिदम्बरम ने उल्लेख किया है, हम अपनी बुनियादी नीतिगत ढांचे में, पूंजी के दक्षतापूर्ण

उपयोग पर आधारित वृद्धि तथा ठोस व्यापक आर्थिक नीतियों द्वारा सुनिश्चित की गई स्थिरता, इन दोनों ही आधारों पर कोई बदलाव लाने की आशा नहीं करते।

(ख) कारणों पर वैश्विक सहमति तथा नीति संबंधी प्रतिक्रियाओं के प्रति दृष्टिकोण

हम ऐसा देखते हैं कि वैश्विक गतिविधियों का, विशेषकर उनका जो विश्व के वित्तीय बाजारों में हो रही हैं, उदीयमान बाजारों की वित्तीय स्थितियों पर सर्वाधिक प्रत्यक्ष और गंभीर प्रभाव है। वैश्विक असंतुलनों में किए गए किसी भी अचानक और अव्यवस्थित समायोजनों के गंभीर प्रतिकूल निहितार्थ होंगे। इन गतिविधियों को मानते हुए भारत के प्रधान मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने कुछ सप्ताह पहले हैदराबाद में 39वीं वार्षिक आम बैठक में एशियाई विकास बैंक के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स को संबोधित अपने स्वागत भाषण में इन असंतुलनों को ठीक करने की महत्ता को रेखांकित किया था। मैं उनके भाषण से उद्धृत करता हूँ :

“जहां चालू खाते की स्थितियों में कुछ सीमा तक विसंगतियों की अपेक्षा की जा सकती है - और वे वांछनीय भी हैं; वहीं भारी विसंगतियां उनकी निर्वहनीयता और कठोर परिणामों के बारे में चिंताएं पैदा करती हैं। इन असंतुलनों को ठीक करने की प्रक्रिया विघटनकारी हो सकती है, यदि यह अचानक और अनपेक्षित हो। वैश्विक असंतुलन का वर्तमान स्तर हमेशा के लिए बनाए नहीं रखा जा सकता। यह उन देशों से जिनका चालू खाता अधिशेष में है तथा उन देशों से जिनका चालू खाता घाटे में है, दोनों से ही कार्रवाई करने की मांग करता है। एक अचानक आनेवाली गिरावट को रोकने के लिए इन असंतुलनों को ठीक करने के लिए एक समन्वित प्रयास आवश्यक है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को इस संबंध में एक सक्रिय भूमिका निभाने की जरूरत है।”

हैदराबाद में हुई एशियाई विकास बैंक की उसी वार्षिक बैठक में वैश्विक असंतुलनों पर विस्तार से चर्चा करते हुए हमारे वित्तमंत्री श्री पी. चिदम्बरम ने यह रेखांकित किया था कि हमें इन वैश्विक असंतुलनों से इस प्रकार निपटना है ताकि वैश्विक समेकन के लाभ निर्विघ्न रूप में जारी रहें। उन्होंने यह भी रेखांकित किया था कि वैश्विक असंतुलन को कम करने की प्रक्रिया में अन्य देशों के साथ मिलकर एशिया को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। मैं उनके भाषण से उद्धृत करता हूँ :

“मुझे यह बात दोहरानी चाहिए कि बहाली (समुत्थान) प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए तथा वैश्विक असंतुलनों को व्यवस्थित रूप में ठीक करने के लिए सहयोगपूर्ण रवैया की अत्यधिक आवश्यकता है।”

हमने वैश्विक असंतुलनों के मुद्दे को भारतीय रिज़र्व बैंक की वर्ष 2002-03 की वार्षिक रिपोर्ट में उठाया था। उस समय हमने महसूस किया

था कि इस समस्या में भविष्य में वैश्विक अर्थव्यवस्था का ध्यान आकर्षित करने की क्षमता है। उक्त रिपोर्ट में कहा गया था :

“यद्यपि बढ़ते हुए असंतुलनों को वैश्वीकरण की एक आंतरिक विशेषता के रूप में देखा जा सकता है, तथापि किसी एक अर्थव्यवस्था के विरुद्ध निवल दावों के संचयन की कुछ सीमाएं हैं जो लगातार बने हुए चालू खाता घाटे में निहित हैं। ऐसे दावों के निपटान की लागत चालू खाता घाटे में और जुड़ती चली जाती है और कुछ परिस्थितियों में यह अस्थिरताकारक हो सकती है।”

पहले व्यक्त की गई ये आशंकाएं अपेक्षित सिद्ध हुई हैं।

इस स्थिति में, यह उचित होगा कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों को यहां सूचीबद्ध किया जाए जो यह मानते हुए कि ऐसी नीति संबंधी पहलें मोटे तौर पर इस व्याख्यान में पहले व्यक्त किए गए उभरते हुए मतैक्य के अनुरूप होंगी, वैश्विक असंतुलनों के समाधान के संबंध में की जानेवाली पहलों को संचालित करेंगी।

सर्वप्रथम, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे बहुपक्षीय (बहुराष्ट्रीय) संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं के अपने विश्लेषण में तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी तुलनात्मक स्थितियों में संतुलित दिखाई दें। इससे उनकी नीति संबंधी सलाह की विश्वसनीयता बढ़ेगी जिस पर प्रत्येक देश में विचार किया जाएगा।

दूसरे, इसके साथ ही साथ, प्रत्येक देश द्वारा की गई कार्रवाई बहुराष्ट्रीय हित से संचालित होगी। बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे इसका विश्लेषण करें, पता लगाएं और उससे सहमति बनाएं कि नीतिगत कार्रवाई किस प्रकार दीर्घकालीन राष्ट्रीय हितों को पूरा करेगी।

तीसरे, यह वांछनीय है कि प्रत्येक देश के नीति निर्माताओं को इस बात के लिए सहमत कराया जाए कि उपयुक्त समझी गई ये नीतिगत कार्रवाई स्वयं उनके देश के दीर्घकालीन हित के लिए हैं। इस संबंध में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था की प्रासंगिक चुनौतियों को उचित भारांक दिए जाएं। उदाहरण के लिए भारत जैसे देश में रोजगार और गरीबी उन्मूलन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी है।

चौथे, यह मानना जरूरी है कि ऐसी जटिल परिस्थिति को देखते हुए सहयोग जरूरी है जहां न तो कारण और न ही समाधान पूर्ण स्पष्ट हैं। तथापि, प्रथम कदम के रूप में, उन दिशाओं, और प्रथम सिद्धांतों पर जो सर्वाधिक उपयुक्त हों, व्यापक सहमति हो सकती है। नीतियों में सामंजस्य पर जोर तथा सहयोगपूर्ण समाधानों की खोज यथोचित लगते हैं।

(ग) वैश्विक असंतुलनों का भारत पर संभावित प्रभाव

जैसा कि हाल की एशियाई विकास बैंक की बैठक में हमारे वित्त मंत्री ने रेखांकित किया था कि वास्तविक और बाह्य क्षेत्रों पर प्रभाव के अलावा यह भी अनुभव किया गया है कि मुद्रा और पूंजी बाजार की गतिविधियां

वैश्विक असंतुलन के साथ आंतरिक रूप से गुंथी हुई हैं और इसलिए उनका अव्यवस्थित रूप से सुधार किए जाने की स्थिति में सभी मुद्राओं में भारी उद्वेगशीलता तथा ब्याज दरों में तीव्र वृद्धि के रूप में इन बाजारों में होने वाले व्यवधान वैश्विक अर्थव्यवस्था में भी होंगे। इन वैश्विक असंतुलनों का कम व्यवस्थित समायोजन होने से भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाला संभावित प्रभाव क्या हो सकता है।

भारत अपने राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार पर निर्भर नहीं है इसके फलस्वरूप वैश्विक गतिविधियों के विपरीत प्रभाव कुछ सीमा तक कम या निष्प्रभावी हो जाएंगे। तथापि, वैश्विक गतिविधियों का घरेलू ब्याज दरों पर कुछ छिटका हुआ प्रभाव हो सकता है और इस प्रकार राजकोषीय स्थिति पर भी। सरकार की राजकोषीय स्थिति भी रिज़र्व बैंक द्वारा धारित विदेशी मुद्रा भंडार के प्रबंधन के स्वरूप के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो सकती है।

इसी प्रकार, वैश्विक असंतुलनों पर किया गया कोई अकस्मात् समायोजन भारत में कंपनियों, बैंकों और परिवारों पर पड़ सकता है, हालांकि यह प्रभाव कुछ अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कम हो सकता है।

कंपनियों पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में यदि अंतरराष्ट्रीय बाजारों में निवेशकों के विश्वास में आए बदलाव के कारण इस प्रभाव का प्रसार व्यापक हो जाता है तो वे कंपनियां जिन्होंने विभिन्न दरों पर उधार लिया हुआ है शायद उन की अपेक्षा ज्यादा बुरीतरह प्रभावित होंगी जिन्होंने निश्चित ब्याज दर के आधार पर उधार लिया है। ऐसी कंपनियां जिन्होंने करेंसियों तथा ब्याज दरों के जोखिम के प्रति सुरक्षा ली हुई है, इसके प्रतिकूल प्रभावों से बच सकते हैं। यह नोट किया जाए कि रिज़र्व बैंक, बैंकों से यह अनुरोध करता रहा है कि वे कंपनियों को अपनी विदेशी मुद्रा जोखिमों की सुरक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें। इसके अलावा, संपूर्ण कंपनी क्षेत्र का बाह्य ऋण के प्रति जोखिम सीमित है क्योंकि उस पर सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक ने कंपनियों के बाह्य वाणिज्यिक उधार पर उच्च सीमा लगाई हुई है। भारत के कुल बाह्य ऋण का स्तर वर्तमान में उसके विदेशी मुद्रा भंडार से कम है।

यद्यपि भारत में बैंकों का जमा आधार मुख्य रूप से रुपयों में हैं और विदेशी मुद्रा आस्तियों में उनका निवेश काफी बड़ा नहीं है, वे आस्तियों, आवास ऋणों और खुदरा बाजार तथा ईक्विटियों में निवेश का वित्तपोषण करते रहे हैं। अनेक उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं की तरह भारत में भी आस्ति मूल्यों में तेजी से वृद्धि हुई है, यदि पूंजी प्रवाह का प्रत्यागमन हुआ तो आस्ति मूल्यों में गिरावट आ सकती है, परंतु जोखिम भारित आस्तियों में बैंकों के निवेश जोखिम को रिज़र्व बैंक की विनियामक कार्रवाईयों द्वारा काफी सीमित रखा गया है। इसी प्रकार ईक्विटी बाजार में भी एक निरंतर ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति देखी गई है, परंतु रिज़र्व बैंक ने बैंकों के निवेश जोखिमों पर उच्चतम सीमा लगाकर उसे सीमित रखने के प्रयास किए हैं। इसके अलावा, भारत में बैंकों ने सरकारी ऋण और अन्य निश्चित आयवाली

प्रतिभूतियों में काफी निवेश किए हुए हैं। यदि अंतरराष्ट्रीय ब्याज दरों में वृद्धि घरेलू ब्याज दरों में भी देखी गई तो बैंकों को अपने निवेश संविभाग के मूल्यों को कम आंकना होगा। जहां तक अंतरराष्ट्रीय ब्याज दरों में वृद्धि घरेलू ब्याज दरों को प्रभावित करती है, उसी सीमा तक यह निवेश संविभाग पर बाजार आधारित दरों पर हानियों की मांग करेगा। तथापि, मुख्य रूप से विनियामक कार्रवाईयों द्वारा समर्थित बैंकिंग क्षेत्र ने इस प्रकार के संभावित आघातों को खपाने की अतिरिक्त शक्ति प्राप्त कर ली है।

जहां तक परिवारों पर पड़ने वाले प्रभावों का संबंध है, यहाँ एक जोखिम है जो आम तौर पर ब्याज दरों में वृद्धि होने से आवास निर्माण बाजार पर प्रभाव पड़ सकता है और यह ब्याज दर जोखिम के प्रति उनके तुलनपत्र की कलाई खोल सकता है जो बैंकों के ऋणों की हानियों के जोखिम को बढ़ा सकता है। परंतु आवास ऋणों के लिए बैंकिंग क्षेत्र का समग्र ऋण जोखिम अपेक्षाकृत काफी छोटा है, अतः विपरीत गतिविधियों का बैंकिंग क्षेत्र पर कोई प्रतिकूल सर्वांगीण निहितार्थ नहीं होगा।

(घ) तेल का नए कारक के रूप में उभरना

तेल निर्यातक देशों में भारी चालू खाता अधिशेषों का उभरना हाल ही की एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। तेल निर्यातक देशों का चालू खाता अधिशेष 2001 में उनके सघट के 6.2 प्रतिशत से बढ़कर 2005 में 19.1 प्रतिशत हो गया है। तेल निर्यातक देशों के संयुक्त चालू खाते अधिशेष का एक तिहाई से कम उनके विदेशी मुद्रा भंडार में झलकता रहा है जो 2005 में 90 बिलियन अमरीकी डालर का बढ़ा है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने (वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक, अप्रैल 2006) रेखांकित किया है कि तेल निर्यातक देशों द्वारा उच्चतर निवल बचतों से जिस सीमा तक वैश्विक ब्याज दरों को कम किया गया है और यह कि इन निम्नतर ब्याज दरों ने बाजार आधारित वित्तीय प्रणालियों वाली अर्थव्यवस्थाओं में मांग को बढ़ाया है। जैसा कि अमेरिका में तेल की कीमतों पर आघातों का अमरीका की बाह्य स्थिति पर भी अतिरिक्त नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

अंतिम तथ्य यही है कि बढ़ती हुई तेल की कीमतें वैश्विक चालू खाता के असंतुलनों को और बढ़ाएंगी। सर्वसम्मति से किए गए पूर्वानुमानों के अनुसार अमरीका का चालू खाता शेष 2006 में और भी नीचे गिरने का अनुमान लगाया गया है। अन्य औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं ने एक संयुक्त अधिशेष दर्शाने का पूर्वानुमान लगाया है, जिसमें जापान और जर्मनी अग्रणी हैं। प्रमुख तेल निर्यातक देशों का सकल चालू खाता अधिशेष थोड़ी अवधि में और भी बढ़ने की आशा की गई है।

इस संबंध में, यह नोट किया जाए कि भारत का तेल आयात बिल 2001-02 में सघट का 2.9 प्रतिशत था, परंतु 2005-06 में यह बढ़कर सघट के 5.5 प्रतिशत हो गया, हालांकि मात्रा की दृष्टि से यह वृद्धि मामूली-सी ही थी।

III. विश्लेषण के लिए कार्यसूची

वैश्विक असंतुलनों की जटिल प्रकृति तथा अव्यवस्थित रूप से जोखिमों को न्यूनतम करने के लिए आगे जो रास्ता है, उसकी जटिलता को देखते हुए यह उपयोगी होगा कि और आगे विश्लेषण के लिए संभावित कार्यसूची का पता लगाया जाए।

पहला, जैसा कि गवर्नर मार्विन किंग द्वारा उल्लेख किया गया है राष्ट्रीय तुलनपत्रों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है ताकि उनसे उन वित्तीय दावों की और अधिक पूरी तस्वीर मिल सके जो एक देश के दूसरे देशों के प्रति हो सकते हैं। राष्ट्रीय तुलन पत्र को देखना समायोजनों के लिए संभावना का पता लगाने के लिए उपयोगी होगा, साथ ही वे आस्तियों और देयताओं के मूल्य में कीमतों में होनेवाले संबंधित परिवर्तनों के संभावित प्रभाव की जानकारी भी देंगे। राष्ट्रीय तुलनपत्रों की देयताओं और आस्तियों की संरचना और उनका आकार महत्वपूर्ण है क्योंकि उनको एक साथ देखकर हम वैश्विक तस्वीर प्राप्त कर सकते हैं। । तथापि हमें इन तुलनपत्रों को गहराई से देखना होगा और उन्हें सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के घटकों में तथा इस प्रक्रिया में उत्पन्न हुई आय के रूप में अलग-अलग करके देखना होगा। इससे संबंधित एक संगत अभिमत यह है कि अमरीका द्वारा धारित आस्तियों पर शेष विश्व द्वारा धारित अमरीकी आस्तियों की तुलना में उच्चतर प्रतिलाभ प्राप्त होते हैं। अलग-अलग किया गया यह विभाजन सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भूमिका के विश्लेषण को स्थायी बनाने तथा असंतुलनों का समाधान खोजने में समर्थ बनाता है। किसी एक देश के निजी क्षेत्र के दावों का दूसरे देश के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के द्विपक्षीय दावे का प्राधान्य हो सकता है। द्विपक्षीय दावों के ऐसे प्राधान्य यदि उल्लेखनीय शक्ति बन जाएं तो क्या वे कभी-कभी इस सारी कवायद में गैर आर्थिक तत्वों को भी अपनी भूमिका अदा करने का अवसर दे सकते हैं?

दूसरे, 1997-98 के पूर्व-एशियाई देशों के संकट के अनुभव के बाद जहां इस संकट को बढ़ाने में निजी क्षेत्र की संवेदनशीलता ने सरकारी क्षेत्र के असंतुलनों से ज्यादा भूमिका अदा की, तीसरी पीढ़ी के मॉडल वित्तीय संकट का कारण बनने में तुलनपत्र की विसंगतियों की भूमिका को उभार कर सामने लाए हैं। जैसा कि परंपरागत व्यापक आर्थिक सम्मूच्यों से देखा जा सकता है, किसी देश का तुलनपत्र काफी मजबूत हो सकता है, तो भी घरेलू संरचना का विश्लेषण इन असंतुलनों को कम करने के तरीकों का पता लगाने के लिए उनकी संवेदनशीलता का विश्लेषण उपयोगी हो सकता है। अतः यह उपयोगी होगा कि किसी देश के अंदर विभिन्न तुलनपत्रों जैसे सरकारी क्षेत्र, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं सहित वित्तीय क्षेत्र, कंपनियों और परिवारों सहित गैर वित्तीय निजी क्षेत्र के तुलनपत्रों में वैश्विक असंतुलनों के प्रभाव का विश्लेषण किया जाए।

तीसरे, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, तेल निर्यातक देशों का अधिशेष वैश्विक असंतुलनों की चर्चा में एक नया कारक जुड़ गया है। इस बात के कुछ संकेत हैं कि तेल अधिशेषों को आधिकारिक रिजर्व की

तुलना में अधिक विशाखीकृत रूप में निवेशित किया जा रहा है। ऐसा लगता है कि तेल निर्यातक देशों ने स्टॉक मार्केट तथा भूसंपदा ने दीर्घावधिक ब्याज दरों तथा उभरते बाजार के बांडों के दायरे की निम्न रखने में सहायता की है। यद्यपि नीति संबंधी दरें बढ़ती रही हैं। एक रोचक मुद्दा वैश्विक असंतुलनों को कम करने में उनकी प्रतिक्रियाओं के स्वरूप का हो सकता है।

चौथे, एक तरह से वैश्विक असंतुलन अपूर्ण वैश्वीकरण की झलक है। यदि वैश्वीकरण पूर्ण हुआ होता, तो एक देश की बचतों की अधिशेष राशि एक ऐसे देश द्वारा उपयोग में लाई जा सकती थी जिसकी बचतों में घाटा है, जैसा कि भारत और अमरीका के विभिन्न राज्यों के बीच होता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि जैसे-जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था और अधिक समन्वित होती जाएगी वैसे-वैसे वैश्विक असंतुलनों का मुद्दा आसान होता जाएगा।

पांचवे, घरेलू अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में विदेशी मुद्रा विनिमय दरों की व्यवस्था की समीक्षा करने की बढ़ती हुई भूमिका क्या है ? कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि उभरते हुए साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि घरेलू मूल्यों में घटबढ़ कुछ सीमा तक विनिमय दर में काफी सीमा तक घटबढ़ से अप्रभावित रहते हैं। यदि ऐसा है तो विनिमय दर समायोजन के माध्यम से स्वयं वैश्विक पुनर्संतुलन लाने की संभावना काफी उत्साहजनक नहीं होगी। निःसंदेह विदेशी मुद्रा विनिमय दर को वैश्विक पुनर्संतुलन लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, परंतु यहां मुद्दा उसका पुनर्संतुलन लाने की पूर्ण प्रक्रिया के अन्य कारकों जैसे - बचत निवेश, राजकोषीय घाटा, निवेश बढ़ाना, संरचनागत सुधार तथा घरेलू उत्पाद और रोजगार के साथ उसका संबंध है। यहां वर्णित विभिन्न घटकों के बीच संपर्क अलग-अलग देशों में अलग-अलग हो सकता है।

छठें, बचत और निवेश की दरों, राजकोषीय घाटे, वृद्धि के प्रेरकों (घरेलू बनाम विदेशी मांग) तथा उनके विदेशी मुद्रा की विनिमय दरों में नमनीयता की मात्रा की दृष्टि से एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के बीच भारी विविधता है। इस प्रकार, वैश्विक वित्तीय असंतुलनों के प्रति योगदान करने वाले इन कारकों को उसी रूप में एक समान रूप में योगदान करने वाला मानना कठिन होगा और न ही सभी एशियाई अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक वित्तीय असंतुलनों के समायोजन से एक समान रूप से प्रभावित होंगी। तदनुसार, इस मुद्दे पर प्रत्येक अलग अलग देश की प्रतिक्रिया भी उसकी परिस्थितियों के अनुसार होगी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में बढ़ते हुए अधिकाधिक समन्वय के साथ, पुनर्संतुलन की प्रक्रिया उन्हें कैसे प्रभावित करेगी यह इस स्वरूप पर निर्भर करता है कि एशिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाएं इस प्रक्रिया का प्रबंधन किस प्रकार करती हैं।

सातवें, हमारे प्रधानमंत्री प्रो. मनमोहन सिंह ने यह सुझाव दिया है कि इस क्षेत्र में निवेशगत मांग की संभावना को देखते हुए हमें बचतों का उपयोग करने के बेहतर तरीके ढूंढने चाहिए तथा इसी क्षेत्र में निवेश के

अवसर ढूंढने चाहिए। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण पहलू क्षेत्र के अंदर ही मांग को पैदा करने का मुद्दा होगा ताकि चालू खाते के अधिशेष स्वयं इसी क्षेत्र में खप जाएं। मांग पैदा करने की यह प्रक्रिया वैश्विक असंतुलनों को व्यवस्थित रूप में ठीक करने में सहायता करेगी।

आठवें, हमें वह जानकर आश्चर्य होगा कि क्या वैश्विक असंतुलनों के बारे में वित्तीय बाजारों और नीति निर्माताओं की अवधारणाओं के बीच असंगति या संवाद-हीनता की स्थिति है। नीति निर्माता चिंताओं के कुछ संकेत देते हैं, परंतु वित्तीय बाजारों की प्रतिक्रियाएं अक्सर इन संकेतों से बेमेल होती हैं। रोचक रूप में, इसकी गाथा संबंधी साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं के विश्लेषक असंतुलनों के जोखिमों को कम करने के प्रति संवदेनशील होते हैं, परंतु सहभागियों का आचरण उस जागरूकता को नहीं दर्शाता। निःसंदेह असंगति का यह मुद्दा कोई नया नहीं है। इस अतर्कसंगत प्रधानता के संबंध में श्री एलेन ग्रीनस्पैन के वक्तव्य के बाद भी यदि ऐसी विसंगति सही है और बनी रहती है, तो सार्वजनिक (सरकारी) नीति संबंधी पहले की प्रभावशीलता क्या होगी?

नौवें, वैश्विक अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति का वर्णन करने के लिए जिसे एक स्थिर वैषम्य के रूप में बताया गया है उसकी व्याख्या करने के लिए परिणाम का पता न लगाए जा सकने वाले कारकों का आकलन करने का क्या कोई लाभ है? उदाहरण के लिए वित्तीय बाजारों के विश्वास की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र के हस्ताक्षरों का मूल्य जो उसे सुरक्षित स्थल की हैसियत प्रदान कर देते हैं, कोई कारक हो सकता है, हालांकि मुद्दा यह है कि क्या यह बहुत लंबे समय या सदा के लिए वैध होगा। अमरीका में उत्पादकता संबंधी लाभों को बनाए रखने की अवधारणा इसकी सिद्ध नमनीयता के कारण दूसरा ही हो सकता है। बढ़ती हुई वैश्विक बचतों को नियोजित करने में विकल्पों की कमी भी प्रासंगिक हो सकती है, निःसंदेह उनके परिमाणों का पता लगाना कठिन है, परंतु विश्लेषण और आकलन के लिए ये प्रासंगिक हैं ही।

अंतिम, क्या यह संभव है कि व्यवस्थित समायोजनों और अव्यवस्थित या विघ्नकारी समायोजनों के बीच कई मध्यस्थक स्थितियां हैं? मामूली-से समायोजनों की एक शृंखला जो अक्सर तेजी से आती है, ऐसी घटित हो सकती है जो बेतरतीब या निरुद्देश्य लग सकती है, परंतु परस्पर प्रतिक्रिया कारी तथा पुनरावृत्तिपरक प्रक्रिया जिसमें बाजार राष्ट्रीय नीतियां तथा वैश्विक सहयोग शामिल हैं, के रूप में यह असंतुलनों को धीरे-धीरे क्रमिक रूप से कम करने की ओर बढ़ सकती है। यहां प्रस्तावित विश्लेषण की कार्यसूची वैश्विक असंतुलनों को कम करने वाले ऐसे तत्कालिक परिदृश्यों का पता लगाने में सहायक हो सकती है।

IV. निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में, 1980 के बाद से और विशेषकर, 1990 के बाद के दशक में किए गए सुधारों के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था का कार्य-निष्पादन वृद्धि और स्थिरता इन दोनों ही दृष्टियों से कई मायनों में एक प्रभावी सफलता की कहानी रही है। विश्व अर्थव्यवस्था के साथ क्रमिक रूप से बढ़ते हुए समेकन के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था ने बढ़ती हुई वैश्विक प्रतिस्पर्धा के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया की है। भारतीय अर्थव्यवस्था का उच्च वृद्धि वाला चालू चरण भी बढ़ती हुई घरेलू बचतों के अनुरूप है। यद्यपि भारत चालू वैश्विक वित्तीय असंतुलनों में अपनी ओर मुश्किल से ही कोई योगदान करता होगा, फिर भी व्यापार संहभागी अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख मुद्दाओं में, तथा संबंधित व्याज दरों और चालू खातों में होने वाले भारी और त्वरित समायोजन अप्रत्यक्ष रूप से, परंतु महत्वपूर्ण रूप में, भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकते हैं। अतः हमें वैश्विक असंतुलनों को कम करने की प्रक्रिया में, भारी योगदान करना होगा और हम वर्तमान पहलों से सफलतापूर्वक परिणाम प्राप्त करना सुनिश्चित करने में अपनी भूमिका निभा देने के इच्छुक हैं।